P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-12* August- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सामाजिक जीवन का एक दयनीय पक्ष : स्त्रियों का विडम्बित जीवन

A Pathetic Aspect of Social Life: The Ironic Life of Women

Paper Submission: 12/08/2020, Date ofAcceptance: 26/08/2020, Date of Publication: 27/08/2020

पूनम त्रिपाठी
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
ए0पी0एस0विश्वविद्यालय,
रीवा, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र जिसका शीर्षक है, ''सामाजिक जीवन का एक दयनीय पक्षः स्त्रियों का विडम्बित जीवन'' में प्राचीन काल से अद्यतन नारी जीवन में आए विभिन्न परिवर्तनों को दर्शाया गया है। इनकी दयनीय स्थिति को साङ्गोपांग दर्शाने के लिए विभिन्न संदर्भ ग्रंथों का सहारा लिया गया है। इस शोधपत्र में स्त्रियों की स्थितियों के प्रत्येक पहलू को पुष्ट एवं तथ्य परक बनाने के उद्देश्य से विभिन्न साहित्यकार तथा विद्वानों के मतों का सहारा लिया गया है। इस शोधपत्र में नारियों के जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके जीवन को विडम्बित करने वाली विविध व्यवस्थाओं को परत दर परत उभारने की कोशिश की गई है तथा उनके जीवन की विडम्बनाओं को तोड़ने का सुझाव भी दिया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में आधुनिक नारियों की नवोन्वोषित चेतना तथा समाज के निर्माण में इनके अप्रतिम योगदान एवं सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक–सांस्कृतिक आदि विविध क्षेत्रें में इनके महत्त्वपूर्ण योगदान को दर्शाया गया है तथा व्यभिचार–दुराचार से निपटने के लिए उन सारे बिन्दुओं पर सुझाव दिया गया है, जो स्त्रियों के आत्म–सम्मान की रक्षा तथा मानवीय मूल्यों को बचाने में सही कारगर होगा। साहित्यावलोकन की दृष्टि में नारी के सम्मान के प्रत्येक पक्ष महत्त्वपूर्ण हैं, जिसकी वह हकदार है।

The research paper, titled "A Pathetic Side of Social Life: The ironic Life of Women", depicts the various changes in women's life since ancient times. Various reference texts have been resorted to to show their pathetic condition. In this paper, with the aim of making every aspect of the women's situation strong and fact-based, the opinions of different writers and scholars have been taken. In this paper, various arrangements that have been complicating the life of women from birth to death, have been tried to be exposed layer by layer and it has been suggested to break the irony of their lives. The presented paper shows the innovative consciousness of modern women and their outstanding contribution in the construction of society and their significant contribution in various fields like social, political, economic, literary-cultural etc. and suggestions on all those points to deal with adultery. It has been given, which will be effective in protecting women's self-respect and saving human values. From the point of view of literature, every aspect of the honor of the woman is important, which she deserves.

मुख्य शब्द : विडम्बना, जड़–चेतन, नवोन्वोषित, सान्निध्य–जन्य सोच।
Irony, Unconscious-conscious, Innovative, Congenial Thinking.

प्रस्तावना

नारी जीवन एक विडम्बना है। नर और नारी दो भिन्न–भिन्न तत्त्वों के प्रतिरूप हैं। समस्त ब्रह्माण्ड की संरचना जड़–चेतन, स्त्री–पुरूष सम्बन्धें की संसृष्टि है। प्राचीन काल में पुरूषों के साथ समता तथा बराबरी की स्थिति से लेकर, मध्ययुगीन अवमानना, उपेक्षा एवं तिरस्कार की स्थिति से लेकर आधुनिक कालीन मुक्ति आन्दोलन तक अनेक–उत्थान–पतन की अवस्था से गुजरते हुए स्त्रियों को स्थिति में कई बदलाव आए हैं। शोषित–उत्पीड़ित गरीब और अछूत दलितों की भाँति ही सदियों से पुरूषों के चंगुल में फँसी हुई नारी की करूण दास्तान का एक लम्बा इतिहास है। प्राचीन काल में भारत की महिलाओं का बहुत सम्मान किया जाता था। परन्तु जैसे–जैसे समय बीतता गया स्त्रियों की स्थिति में भीषण बदलाव आया, इनके प्रति लोगों की सोच बदलने लगी। बहुविवाह, प्रथा, सतीप्रथा, दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, बालात्कार आदि

समस्याओं के समाधन हेतु राजा राम मोहन राय से लेकर दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द विद्यासागर आदि समाज सुधरकों ने इस दिशा में सक्रिय प्रयास किया था और आज भी समाज सुधारकों द्वारा स्त्रियों की समस्या के उन्मूलन के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। समाज में स्त्रियों की स्थिति को दर्शाने के प्रयास उपन्यासों, कहानियों में बराबर होते आए हैं। किन्तु इधर कुछ वर्षों से इसकी चर्चा अधिक होने लगी है, विशेष रूप से कुछ नारी लेखिकाओं ने इस दिशा में विशेष प्रयास किए हैं। आठवें दशक से लेखक और लेखिकाओं ने स्त्रियों की समस्याओं को अपनी रचनाओं में अधिक उभारने का प्रयास किया है। उषा प्रियम्बदा, मन्नूभंडारी, मृदुलागर्ग, कृष्णा सोबती, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद आदि ने अपनी रचनाओं में इनकी समस्याओं और उनके उन्मूलन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र में सृष्टि के अपरिहार्य पक्ष स्त्री के विडम्बित जीवन का साङ्गोपांग परिचय प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल से लेकर आज तक स्त्रियों की स्थिति में कई बदलाव आएँ, सदियों से पुरूष के चंगुल में फँसी हुई स्त्रियों की करूण दास्तान का एक लम्बा इतिहास है। आदिकाल से अद्यतन इनकी समस्याओं के उन्मूलन हेतु हमारे देश के समाज सुधरकों द्वारा इस दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं, पर आज भी स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है, जिसका वह हकदार है। स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति देश के समाज सुधरक, कवि, साहित्यकार तथा विभिन्न समाजिक, राजनीतिक तंत्र पर्याप्त सजग एवं संवेदनशील हैं। ये इन समस्याओं के सर्वांग उन्मूलन हेतु निरंतर प्रयत्नशील हैं, सचेष्ट हैं। समाज की एक सुशिक्षित नागरिक होने के नाते मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मैं इस दिशा में स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए प्रयासरत रहूँ। मेरे इस शोधपत्र का मूल उद्देश्य इस सृष्टि के अपरिहार्य अंग स्त्रियों को उनके वर्तमान बिडम्बित जीवन से मुक्त कराकर उन्हें प्राचीन गौरवशाली महत्वपूर्ण आदर्श भारतीय नारी के महिमा मण्डित पद पर पुर्नस्थापित कर सकूँ–''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।'' प्रस्तुत शोधपत्र में प्राचीनकाल से लेकर अब तक स्त्रियों के रूपों में आए परिवर्त्तनों के अवलोकनार्थ समाज सुधरकों के इतिहास ग्रंथों तथा अन्य रचनाकारों की कृतियों का सहारा लिया गया है। इसमें उन बिन्दुओं को भी दर्शाया गया है, जिनसे अवगत होकर समाज की धरणा में परिवर्तन हो और वह विकास के क्रम में स्त्रियों की अहम् भूमिका को समझ सके तथा स्त्रियाँ भी अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हों।

साहित्यावलोकन

हिन्दी साहित्यकारों ने स्त्रियों की मुक्ति की अवधरणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किए हैं वे स्त्री विमर्श के अन्तर्गत आते हैं। पुरूष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को दर्शाने का प्रयास विभिन्न साहित्यकारों द्वारा उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विविध काव्य कृत्तियों के माध्यम से किया गया है। इन रचनाओं के अवलोकन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी को विविध रूपों, आकृति, प्रकृति, स्वरूप एवं आदर्शों के रूप में उरेखा गया है। वैदिककाल से लेकर पौराणिक युग तक नारी को आदर्श स्वरूप में रेखांकित किया गया है तथा उन्हें देवी के रूप में चित्रित किया गया है। उस युग में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक नारियों के आदर्श स्वरूप की चर्चा मिलती है, यथा–गार्गी, मैत्रेयी, भारती आदि। उस समय स्त्रियाँ माता, पत्नी, पुत्री, बहन के रूप में सम्मानित थीं, जैसा कि प्रसिद्ध (छायावादी कवि पंत की उक्ति है–''माँ, देवी, सहचरी प्राण।'' आगे चलकर धीरे–धीरे नारी के स्वरूप में परिवर्त्तन होता चला गया और वह देवित्त्व के स्तर से शनैः–शनैः फिसलती चली गई और सहचरी तथा सखी के बदले भोग्या, सेविका, दासी, आज्ञाकारिणी, मनो विनोद की वस्तु मात्र बनकर रह गई, जिसका संकेत साहित्य के लेखक–लेखिकाओं द्वारा अपनी रचना में बड़े मनोयोग से किया गया है, जिसका कुछ अंश प्रस्तुत शोध पत्र में दिया गया है। उस समय स्त्रियों की अवधरणा एक नख–शिख श्रृंगारवाली कामिनी की थी। स्त्रियाँ एक रमणी कामिनी रूपा जीवा के रूप में साहित्य में चित्रित हुई है। इस तरह से समय के साथ–साथ स्त्रियों की चेतना में परिवर्त्तन हुए और आधुनिक काल से स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के विषय में जागरूक होती नजर आती है। वे एक सम्पत्ति के रूप में नहीं बल्कि स्वतंत्र अस्तित्ववती मानवी के रूप में अपनी पहचान बनाना चाहती हैं। वे पुरूष की जीवन संगिनी–सहधर्मिणी के रूप में जीना चाहती हैं, क्योंकि सृष्टि–निर्माण में स्त्री–पुरूष दोनों की एक समान भूमिका है। जीवन संगिनी का अर्थ यह नहीं कि वे केवल पति–पत्नी के रूप में सीमित रहे, बल्कि वे प्रेमिका माता–बहन–पुत्री किसी भी रूप में अपने स्वतंत्र मानवी मूल्यों की स्थापना करना चाहती हैं। स्त्रियों की समाज निर्माण में अहम् भूमिका है। यदि उनका जीवन बिडम्बनाओं से भरा रहे तो भला वे स्वस्थ समाज की स्थापना कैसे कर सकती हैं। ऐसे में स्त्रियों की समस्याओं और निदर्शन निवारण हेतु साहित्यिक अवधारणा एवं मार्गदर्शन कितना महत्त्वपूर्ण है, इसे सहज ही समझा जा सकता है।

भारत में स्त्रियों का इतिहास काफी गतिशील रहा है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक गार्गी, मैत्रेयी, रजिया सुल्तान, महारानी दुर्गावती, मीराबाई, झाँसी की रानी, चन्द्रमुखी बसु, कारबीनी गांगुली, आनंदी गोपाल जोशी, अरूणा आसिफ अली, सुचेता कृपलानी, देशमुख लक्ष्मी सहगल, सरोजिनी नायडू, महादेवी वर्मा, इन्दिरा गाँधी, प्रतिभा सिंह पाटिल आदि स्त्रियाँ विदुषी, वीरांगना, कवयित्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष, ऊँचे–ऊँचे पदाधिकारी आदि के रूप में अपना नाम दर्ज कराती नजर आती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों में भी वह क्षमता है जो पुरूषों में है। हालांकि स्त्रियों के संदर्भ में साहित्य के स्रोत बहुत कम मिलते हैं, फिर भी आधुनिक प्रगतिशील लेखक–लेखिकाओं का ध्यान समाज के सामान्य स्त्रियों की दयनीय स्थितियों की ओर गया जो अपने घर में ही नहीं बाहर भी शोषण की भरपूर शिकार है। प्रस्तुत संदर्भ में प्रगतिशील लेखक–लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से वर्त्तमान में नानाविध, दैहिक, नैतिक, आर्थिक आदि विविध शोषणों की शिकार

नारियों के उत्पीड़न की दिशा में जन समाज का भरपूर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है तथा एक शोषण मुक्त आदर्श नारी समाज की परिकल्पना को सत्यापित करने की भरपूर चेष्टा की है। स्त्रियों के सम्मान में आज महिला दिवस प्रत्येक वर्ष 8 मार्च को मनाया जाता है, पर आज भी हमारे देश में सामान्य स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। कहने को कह दिया जाता है कि ''जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं'', लेकिन व्यवहार में पुरूष प्रधान समाज में उसे बंदी ही बनाकर रखा गया है। समाज के सारे आचार–व्यवहारगत बंधन केवल नारियों पर ही आरोपित किये जाते हैं। भाई के कल्याण, पुत्र के कल्याण, पति कल्याण के जितने व्रत और पर्व हैं उन्हें पूरा करना नारियों के जिम्में ही है। नारी कल्याण के लिए पुत्र द्वारा माता, भाई द्वारा बहन, पति द्वारा पत्नी के लिए इस तरह का कोई विधान नहीं है। नारी को अंधिकांशतः घर की चहारदीवारी के अंदर रहकर घुटते हुए अपनी भूमिका का निर्वाहन करना पड़ता है और यदि वह नौकरी करती है, तो भी उसे बाहर और भीतर दोनों तरफ से शोषित होना पड़ता है तथा समाज की कलुषित भावनाओं का आलम्बन बनना पड़ता है।

मनुस्मृति के अनुसार शिव–शिवा अपने पिण्डरूप में ही सृष्टि–संरचना के मूलाधर हैं अर्थात् इन दोनों के समन्वय से ही इस विशाल सृष्टि की संरचना होती है। अगर यह सत्य है तो फिर नर–नारी, स्त्री–पुरूष, मर्द–औरत के जीवन चक्र में औरतों का जीवन विडम्बनाओं से भरा क्यों तथा सामाजिक मूल्यों के आधार पर नारी जीवन की ऐसी उपेक्षा क्यों है ? परिवार में बेटे–बेटी में जो फर्क किया जाता है, वहीं से नारी जीवन की विडम्बनाओं की शुरूआत होती है। संदर्भगत मैत्रेयी पुष्पा की कहानी, ''तुम किसकी बिन्नी ? ''में बेटे की आस में कई बेटियों के गर्भपात के बाद माँ की स्थिति ''कहीं लड़की हुई तो... ? तीन बेटी की कल्पना मात्र से दहल उठीं। सम्पूर्ण शरीर एक–एक पल को थरथर्रा उठा। रात में नींद कम आने लगी। कमरे में लगी गदगदे बच्चे की तस्वीर में जब लड़का दिखता तो कलेजा हुलस उठता, लेकिन लड़की... वे भयाक्रांत हो उठती।'' (पृष्ठ संख्या 11, 2014 नवीन संस्करण)[1] यह समाज इस सनातन आर्ष सिद्धांत–''सत्यं–शिवं–सुन्दरम्'' को सर्वथा विस्मृत कर चुका है। कहने का तात्पर्य यह है कि नर–नारी के जीवन के सम्यक सामंजस्य, सहधर्मिता, सहभागिता से ही सृष्टि का विकास–विस्तार एवं सुन्दरीकरण होता है तथा यह नाम रूपात्मक जगत इतना सुन्दर–सम्मोहक एवं आकर्षक बन पाता है।

अगर आज हम स्वयं को प्रगतिशील, विकसित तथा आधुनिक मानते हैं तो इस विकास, प्रगति तथा आधुनिकीकरण में नारियों का कुछ कम त्याग, बलिदान एवं आत्मोत्सर्ग नहीं है। कहना न होगा कि नारी की त्याग–तपस्या, आत्म सम्मान के उत्सर्ग की नींव पर ही इस विशाल आधुनिक प्रगतिशील समाज की अटट्ालिका खड़ी है। वह इस बिडम्बना को तोड़ना चाहती है, जब स्त्रियों को गाय–भैंस की तरह चाहे जिस खूँटे से बाँध दो, वह उफ तक नहीं करती थी। भारतीय समाज में लड़कियों को दबाकर रखा जाता है। ज्यादा बोलो नहीं, ज्यादा हँसो नहीं, यहाँ–वहाँ जाओ नहीं, उसे समाज में मर्यादित कुल के धरोहर के रूप में समझा जाता है। बचपन में ही लड़के और लड़कियों के खेल–खिलौने स्थान सभी अलग होते हैं। लड़की को पराये घर जाना है, इसका ख्याल सिर्फ माँ बाप को ही नहीं बल्कि पूरे समाज को होता है। लड़के और लड़कियों में यह चेतना बचपन से ही डाल दी जाती है और वहीं से औरतों की विडम्बना की शुरूआत होती है। भाई–बाहर खेलता है तथा बहन घर के अन्दर और परम्परागत अपने पराये घर जाने वाली रीतियों का होता है, जिसमें लड़की को चुना जाता है। उसके साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक एक खाका तैयार किया जाता है और इसी खाके के अनुसार इसे ढ़ाला जाता है। यदि यही खाका समाज द्वारा दूसरे पक्ष पुरूष के साथ होता तो शायद आज यह विकृत मानसिकता हमारे सामने नहीं होती। भारतीय नारी के परिवेश के विषय में चित्रा मुद्गल के अनुसार– ''मर्दों की भाँति रहना, वे समस्त आचार व्यवहार, व्यवस्था को अपनाना–यही समानता का दृष्टिकोण है? जब वे अव्यवस्थाएँ मर्दों के लिए अनैतिक, अमानवीय और निरंकुशताएँ हैं तो स्त्रियों के लिए कैसे उचित हो सकती हैं।'''एक जमीन अपनी'', (पृष्ठं सं0 177, 1999 संस्करण)।[2] कहने का तात्पर्य यह है कि जो अनैतिकताएँ या अनीतियाँ पुरूषों के लिए वर्जित हैं वे स्त्रियों के लिए समान रूप से वर्जित हैं। पुरूष से समानता का अर्थ निरंकुशता अथवा उच्छृंखलना नहीं है।

भारतीय समाज में दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा, तीन तलाक आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो मिटने का नाम ही नहीं लेती। इनके निवारण के लिए जितने भी कानून आदि बनाएँ जा रहे हैं, वे इन समस्याओं के समाधन की दिशा में कारगर नहीं हो पा रहे हैं। आये दिन प्रायः सभी प्रमुख दैनिक पत्रों में ऐसी खबरें बहुतायत से पढ़ने को मिलती है। घरेलू हिंसा का मुख्य कारण दहेज होना है जिसमें दहेज की न्यूनता को आधार बनाकर दुल्हन को मायके से अधिक दहेज माँगने के लिए अक्सर तरह–तरह की यातनाएँ दी जाती हैं तथा प्रताड़ित किया जाता है। यहाँ तक कि इनका भोजन बंद कर दिया जाता है एवं लोहे की छड़ गर्मकर उनके शरीर को दाग दिया जाता है। यही नहीं उनको घर से निकाल भी दिया जाता है। कहना न होगा कि स्त्रियों को उस बात के लिए प्रताड़ित किया जाता है जिसके लिए वे उत्तरदायी नहीं होतीं। अगर वे किसी कारणवश संतान जनने में असमर्थ होती हैं तो उनकी समुचित चिकित्सा करवाने के बदले उन्हें तानें ही नहीं दिए जाते बल्कि उनके साथ मारपीट भी की जाती है। अगर वह संतानोत्पत्ति में समर्थ होती हैं और अनेक बच्चों का जन्म देती है तो इसके लिए भी उसे दोषी करार दिया जाता है, क्योंकि इन बच्चों के पालन–पोषण में उसे पति या परिवार का यथावश्यक सहयोग प्राप्त नहीं होता। जब वह अपने बच्चों के पालन हेतु अर्थोपार्जन के निमित घर से बाहर डेरा डालती हैं तो उन्हें परिवार से ही नहीं समाज से भी अनेक तानें सुनने को मिलते हैं तथा तरह–तरह की नैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्वावलम्बन के अभाव में नारी

अपने ही परिवार में शोषित, प्रताड़ित होती रही है, जिनका विरोध करने का न तो उनके पास साहस है न सामर्थ्य या संबल। नारी–पुरूष के लिए समाज ने जो अलग–अलग प्रतिमान निर्धारित कर रखे हैं, उनका मुखर विरोध हिन्दी कथा साहित्य में यत्र–तत्र देखने को मिलता है। संदर्भगत रामदरश मिश्रा की कहानी–''एक औरत : एक जिन्दगी'' में नारी पात्र भवानी के विषय में उस गाँव के सुकुमार का वक्तव्य ''बरस पर बरस बीत गये उसे ऐसे जूझते अभावों से, कुरूपताओं से, अंधकारों से। उपवास पर उपवास किया। बाँधाओं पर बाँधाएँ थीं लेकिन किसी के सामने झूकी नहीं। अपार जीवट पाया है इस औरत ने ! अपने केले, अमरूद, जामुनों, नींबुओं को बाजार में ले जाकर बेचने लगी तो लोग झल्लाएँ–''गाँव की नाक कट रही है ! ब्रह्माण की औरत और कुंजड़िन की तरह बाजार में बैठना बड़ा ही खराब है।'' (प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 43)।[3] समाज में नारी को मात्र भोग–विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता से गुजरना पड़ता है। पुरूष भेड़ियों की तरह घात लगाए इस ''नरमचारे'' को चट कर जाने के लिए हर क्षण उतावले रहते हैं। पुरूषों की इस मानसिकता को कथा लेखिका नमिता सिंह ने अपनी उपन्यास ''अपनी सलीवें'' में रेखांकित किया है– ''यह जिन्दगी तो जैसे अंधेरे घने जंगल से निकलने वाली पगडण्डी का नाम है। कब किधर से बाघ या भेड़िया हमला कर दे। किस पेड़ के पीछे से जंगली सुअर दौड़ता हुआ आए और टक्कर मारकर गिरा दें, कुछ पता नहीं।'' (संस्करण–2008, पृष्ठ–89)।[4] नारी को घर से बाहर इतनी सारी मुश्किलों का सामना करते हुए नौकरी या कोई व्यवसाय कर आर्थिक रूप से स्वयं को सुदृढ़ बनना या स्वावलम्बी बनना कितना कठिन है।

हमारे तथाकथित विकसित समाज में आज भी परित्यक्ता और वैधव्य झेलती स्त्री का जीवन वस्तुतः एक त्रासदी है। इनके प्रति हमारे समाज की अवधरणा स्वस्थ नहीं है। पति ने अगर पत्नी को छोड़ दिया तो मान लिया जाता है कि पत्नी में ही अवश्य कोई खोट होगी, जबकि बहुत संभव है कि पति की प्रताड़नाओं एवं दुर्व्यवहार के कारण उसे विवश होकर गृहत्याग करना पड़ा हो। हमारे समाज में काफी समय तक परित्यक्ता को गुजारा भत्ता पाने का कोई अधिकार नहीं था। लम्बे संघर्ष के बाद उसे यह अधिकार प्राप्त हुआ। भारतीय समाज में तलाकशुदा औरत को हेयदृष्टि से देखा जाता है तथा उनका पुनर्विवाह घृणास्पद समझा जाता है, जबकि पुरूष गर्व से दूसरी, तीसरी शादी रचा सकता है। ऐसा करना वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। ऐसा करने पर पुरूषों को उस हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता, जिस दृष्टि से किसी पुनर्विवाहित विधवा या परित्यक्ता को देखा जाता है। सच तो यह है कि ऐसी स्त्रियाँ, परिवार द्वारा परित्यक्त नारियाँ बिल्कुल अछूत बन जाती हैं और समाज उनसे नफरत करने लगता है तथा सर्वथा त्याज्य घोषित कर देता है। भारतीय समाज में दुर्भाग्यवश यदि युवा स्त्री विधवा हो जाती है तो उसका दोष भी उसी के माथे मढ़ दिया जाता है। सास यह कहती हुई पायी जाती है कि अभागन तेरे ही भाग्य फूटे थे, जो मेरे बेटे की मौत हो गई, नहीं तो उसमें कौन–सी खोट थी कि उसकी असमय मृत्यु होती। औरतों की बिडम्बना देखी जाए तो दुःख में डूबी बहू यह कहने का साहस भी नहीं जुटा पाती कि तुम्हारा भी तो बेटा था ? क्या यह तुम्हारा दुर्भाग्य नहीं हो सकता? कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि सम्पन्न परिवार में युवा विधवा बहू को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करने की साजिश की जाती है। इसके पीछे उनकी यह मानसिकता होती है कि अभी–अभी आई लड़की अपार सम्पत्ति की मालकिन न बन बैठे। एक विधवा स्त्री को इन तमाम संघर्षों का सामना आजीवन करना पड़ता है पर औरत जब अपने अन्दर संघर्ष का जज्बा उत्पन्न कर लेती है तो अत्याचार एवं अन्याय के आगे झुकने से मना करती हुई समाज की तमाम कुत्सित रीतियों का खण्डन करती है जो पुरूष समाज अपने स्वार्थ हेतु बनाए हुए है। प्रस्तुत संदर्भ में मैं नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद रचित नाटक ''ध्रुवस्वामिनी'' की नायिका के निम्नांकित कथन को उद्धरित करना चाहूँगी–''यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।'' (संस्करण–2007, पृष्ठ–25)।[5] इतना ही नहीं जब उसे अपने क्लीव, नपुंसक पति से अपने सतित्व रक्षा की कोई उम्मीद नहीं रह जाती है तो वह आत्म सम्मान के रक्षार्थ स्वयं तत्पर हो जाती है –''मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरे हृदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।'' (संस्करण–2007 पृष्ठ–27)।[6] आधुनिक नारी भले ही अब तक कोई युगान्तकारी परिवर्त्तन कर सकने में समर्थ नहीं हुई हो, किन्तु यह कहना भी असत्य नहीं होगा कि आज उनके भीतर एक ऐसी चिनगारी सुलग रही है जो आगे चलकर प्रचण्ड ज्वाला बनकर फूट पड़ेगी और आज के शोषक, वंचक तथा अन्यायी पुरूष अत्याचार को भस्म कर देगी।

आज हमारे समाज में मानवता को शर्मसार कर देने वाली स्त्रियों के साथ बलात्कार की समस्या केवल शहरों में ही नहीं, बल्कि बड़े–बड़े महानगरों में भी समान रूप से व्याप्त हैं। सामाजिक बिडम्बना देखिए, इसका भी जिम्मेवार औरतों को हीं ठहराया जाता है। बलात्कार जैसी जघन्य समस्या पर समीक्षकों द्वारा तर्क यह भी दिया जाता है कि आज की लड़कियों में पहले जैसी शालीनता नहीं है। यह सब उनके अश्लील पहनावे, हाव–भाव, आधुनिक रहन–सहन तथा स्वच्छंद जीवन–शैली का दोष है, जो बलात्कार जैसी समस्याओं को जन्म देती है। औरतों के विषय में समीक्षकों की यह सोच और तर्क दोनों ही बिल्कुल निराधार हैं, क्योंकि आज एक नवयुवती के ही साथ ऐसा नहीं होता बल्कि एक बिल्कुल अनजान, निर्दोष एवं निरीह छोटी उम्र की बालिका पर भी ऐसा अमानुशिक, पाश्विक अत्याचार आए दिन देखने–सुनने में मिलता है। अश्लीलता औरतों में नहीं बल्कि ऐसे अमानवीय, घृणित चेतनायुक्त नर–पशुओं में है जो प्रकृति की अनुपम देन नारी जाति के साथ ऐसा दुष्कर्म करते हैं। स्त्रियों की सुरक्षा हेतु सरकार ने अनेक नियम–कायदे बनाएँ हैं तथा अनेक संस्थाओं एवं समितियों का निर्माण किया है, लेकिन मेरी समझ में इस जटिल समस्या के समाधन के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि एतदर्थ मनुष्य की

मानसिक चेतना और सोच में भी परिवर्त्तन लाने की आवश्यकता है।

सुझाव

स्त्रियों की इन जटिल समस्याओं के निराकरण के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम पुरूष समाज की मौलिक सोच में परिवर्त्तन किया जाए और उन्हें पुरातन नारी समाज के आदर्शों, मूल्यों, बलिदानों से परिचित कराया जाए। उन्हें यह बतलाया जाए कि नारी केवल कामिनी, भोग्या या पुरूष समाज की पिछलगू ही नहीं है, अपितु वह इस सृष्टि का सर्वोत्तम अवदान है जो माता, भगिनी, पत्नी आदि रूपों में आदिकाल से पुरूष समाज की सेवा करती चली आई है। उक्त समस्याओं के समाधान का दूसरा पहलू यह है कि आज हम अपने परिवार में पुत्र तथा पुत्री के लालन–पालन, शिक्षा–दीक्षा तथा रहन–सहन में समानता का व्यवहार नहीं करते। हमें अपने पुत्र के समान ही पुत्री के खान–पान, रहन–सहन, शिक्षा–दीक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन–शैली के निर्माण में समानता बरतनी चाहिए। बालिकाओं को चिरकाल से चली आती हुई मानसिक ग्रंथियों से, मुक्त कर उन्हें बालकों के साथ कंधे से कंधा, मिलाकर, सहचर बनकर जीवन के प्रगति–पथ पर अग्रसर होने में सक्षम बनावें। जब बालक–बालिकाओं में सान्निध्यजन्य सोच उत्पन्न होगी तो आगे चलकर उनके बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रह जाएगा। वे परस्पर हिल–मिलकर संयुक्त प्रयास से अपनी–जीवन–यात्रा को शांतिपूर्वक, सहर्ष तय करेंगे। ऐसे में सामाजिक सोच में स्वतः परिवर्त्तन हो जाएगा और आज का समाजिक कोढ़ तिलक–दहेज की कुप्रथा से सहज ही मुक्ति मिल जाएगी। जब युवक और युवतियाँ समान योग्यता, प्रतिभा, आत्मबल और साहस के साथ सामाजिक जीवन यापन करने लगेंगे तो आगे चलकर पति–पत्नी को एक दूसरे का मोहताज नहीं होना पड़ेगा और वे स्वतः स्वाबलम्बी बन जाएँगे।

कहना न होगा कि उपर्युक्त सिद्धान्तों की प्रस्तावना का अनुपालन सर्वप्रथम परिवार से ही प्रारंभ होगा– परिवार ही वह प्राथमिक पाठशाला है जहाँ व्यक्ति को नागरिकता का प्रथम पाठ पढ़ाया जाता है तथा यहीं से क्रमशः सामाजिक चेतना का विकास होता है। इस पृष्ठभूमि में सभ्य–शिक्षित एवं अनुशासित समाज का निर्माण होता है, जिसकी वृहत्तर सम्पूर्ण इकाई देश या राष्ट्र है। अगर पारिवारिक या सामाजिक पृष्ठभूमि का किसी कारणवश स्वस्थ एवं सम्यक विकास नहीं हो पाता तो राष्ट्र में अनेक ग्रंथिल मानवीय समस्याएँ उठ खड़ी होती है। इन्हीं समस्याओं में एक महत्वपूर्ण ज्वलंत समस्या जो भारतीय समाज में उठ खड़ी हुई है वह है पुरूष और नारी का पारस्परिक सम्बंध तथा उनकी आत्म–निर्भरता एवं स्वाभिमान की रक्षा और उनका शारीरिक तथा नैतिक शोषण से मुक्ति का प्रश्न।

उपर्युक्त समस्याओं के समाधन के लिए सरकारी स्तर पर कठोर से कठोर नियम बनाए जाएँ तथा स्त्रियों को यथोचित शिक्षा प्रदान की जाए ताकि वे स्वाभिमान की रक्षा में समर्थ हो सकें, स्वयं अर्थोपार्जन कर पुरूष पर निर्भरता से मुक्ति पा सकें और हर क्षेत्र में पुरूष की सहभागिता, सहयोगिता प्राप्त कर सकें। ऐसा वे स्वार्थभाव से नहीं, अपितु सेवा भाव से एक पत्नी, पुत्री, भगिनी तथा माँ के रूप में अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का सम्पूर्ण सम्पादन कर सकें। आज नारी की सामाजिक अस्मिता तथा उनकी मर्यादा की रक्षा एवं पारिवारिक, सामाजिक नैतिक शोषण से मुक्ति के लिए सरकार की ओर से जितने भी नियम–कानून बनाए जाते हैं, पुरूष प्रधान समाज में उनका सही–सही अनुपालन नहीं हो पाता क्योंकि इसके नियामक अधिकतर पुरूष ही होते हैं। अतः सरकार को इस दिशा में ऐसा प्रभावी कदम उठाना चाहिए कि उन नियम और कानूनों का शत–प्रतिशत अनुपालन हो सके।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन का यह तात्पर्य नहीं कि आज की स्त्रियाँ सर्वथा दयनीय, असहाय, परावलम्बी तथा परमुखापेक्षी हैं। आज नारी समाज में एक युगान्तकारी परिवर्त्तन आया है। क्रमशः नारी–शिक्षा का विस्तार हो रहा है तथा उनकी चेतना का पर्याप्त विकास हुआ है। आज तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीवन–पथ पर अग्रसर हो रही हैं, शिक्षा, साहित्य, कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में वह नई उफँचाईयों को छू रही हैं। इतना सब होने पर भी प्रश्न उठता है कि क्या औरतों को वह सब कुछ मिल गया है जिसकी वे हकदार हैं ? क्या सचमुच उनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार आ गया ? क्या आज की तथाकथित प्रगतिशील, समतावादी समाज–व्यवस्था में नारियों को वह सब कुछ हो गया है जिसकी वे हकदार हैं ? कहना न होगा कि आज भी नारियाँ अपने वांछित आदर–सम्मान और समानता के अधिकार से वंचित हैं। आज के तथाकथित समतामूलक समाज में भी अधिकांशतः नारियाँ चूल्हा–चौकी, बड़े–बूढ़ों की सेवा सुश्रुषा तथा बच्चे का लालन–पालन तक ही सीमित हैं। हमारे देश के कर्णधारों, समाज के ठेकेदारों, समाज–सेवकों, विधायकों, सांसदों, मंत्रियों या अन्य सरकारी पदाधिकारियों का नारी–उत्थान एवं उनके अधिकार तथा मर्यादा की रक्षा का नारा दिखावा मात्र है। हमें इन्हें यथार्थ धरातल पर उतारना होगा तभी नारियों की दशा और दिशा में वास्तविक सुधार हो सकेगा।

यह सत्य है कि आधुनिक शिक्षित नारियों की मानसिकता में अपेक्षित परिवर्त्तन हुआ है, उनकी चेतना का विकास हुआ है और वे अपने अधिकार तथा कर्तव्यों के प्रति सजग और सचेष्ट हुई हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः मेरे पूरे ब्यौरा का अर्थ यह नहीं कि स्त्रियाँ एकदम दयनीय, निरीह, असहाय और पराधीन हैं। आज औरतों की दुनिया बदल रही है। नारी चेतना का विकास हुआ है। कई क्षेत्रों में वह पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। शिक्षा, साहित्य और काव्य क्षेत्र में नई ऊँचाइयों को छू रही है, पर औरतों की दुनियाँ क्या सचमुच बदली है ? क्या उसे वह सब कुछ मिल रहा जिसका वह हकदार है ? आज भी वह वांछित आदर–सम्मान और बराबरी के दर्जे से वंचित है। उसका एक पैर रसोई और दूसरा देहली के बाहर है। हमारे देश के कर्णधरों का नारी उत्थान, नारी स्वातंत्र्य और नारी

अधिकार का नारा झूठा है, छल है, दिखावा है। इसे वास्तविक धरातल पर उतारना ही उत्थान है। आज की स्त्रियों की चेतना बदली है। भले ही वह कोई युगान्कारी परिवर्त्तन न कर सके किन्तु वह अपनी शक्ति और गरिमा को पहचानने लगी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मैत्रेयी पुष्पा की यादगारी कहानियाँ, नवीन संस्करण–2014 प्रकाशन–हिन्दी पाकेट बुक्स प्रा0 लि0, जे0–40 जोरबाग लेन नई दिल्ली–110003, ISBN-978.81.216.2012.3*
2. *एक जमीन अपनी ;उपन्यास चित्रा मुद्गल प्रकाशन–राजकमल पेपर बैक्स पहला संस्करण : 1999, प्रा0 लि0 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–110002, ISBN-81.267.0301.6*
3. *रामदरश मिश्र की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रथम संस्करण 2015 प्रकाशन–प्रभात पेपर बैक्स, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, ISBN-978.93.5186. 295.6*
4. *अपनी सलीबें ;उपन्यास नमिता सिंह, वाणी प्रकाशन 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, संस्करण– 2008, ISBN-978.81.8143.945.1*
5. *ध्रुवस्वामिनी (नाटक) जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन–पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–211001 संस्करण 2017*
6. *अन्य कई नारी विमर्श पत्र–पत्रिकाओं का अध्ययन किया गया।*